अध्यात्म ज्ञान एवं चिन्तन संस्था

(SOCIETY FOR ADHYATMA STUDIES)

17, सिविल लाइन्स, कमिश्नर ऑफिस के सामने, मुरादाबाद – 244001
मो0 9412241221

ब्रह्म ज्ञान विचार गोष्ठी – 67

27.10.2013

"श्रीमद् भगवद् गीता"
एकादश अध्याय
"विश्वरुप दर्शन योग"

निवेदक

डॉ0 यू0 के0 शाह
शाह नर्सिंग होम,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9359716440

रविन्द्र नाथ कत्याल
अमर बसेरा,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9837041945

सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
17, सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद
फोन नं0 9412241221

श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय – 11
"विश्वरुप दर्शन योग"

अर्जुन उवाच–

मदनुग्रहाय परमं गुह्यम् अध्यात्म संज्ञितम्।
यत् त्वया उक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम।। 1।।

अर्जुन ने कहा–
हे भगवन! मुझपर अनुग्रह करके आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म विषयक उपदेश दिया है उससे मेरा मोह नष्ट हो गया है।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यम् अपि चाव्ययम्।। 2।।

क्योंकि हे कमलनयन! मैने समस्त भूतों की उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन आपसे विस्तारपूर्वक सुना है तथा आपका अविनाशी कभी न समाप्त होने वाला प्रभाव भी सुना है।

एवमेतत् यथात्थ त्वम् आत्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रुपम् ऐश्वरं पुरुषोत्तम।। 3।।

हे परमेश्वर! आप स्वयं को जैसा कहते हैं यह ठीक ऐसा ही है परन्तु हे पुरुषोत्तम! आपके ऐश्वर्य, शक्ति और तेज युक्त रुप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं।

मन्यसे यदि तत् शक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शय आत्मानम् अव्ययम्।। 4।।

हे प्रभु! यदि आप मानते हैं कि मै आपका वह रुप देखने का अधिकारी हूं तो हे योगेश्वर! मुझे अपने उस अविनाशी स्वरुप का दर्शन कराइये।

श्रीभगवान उवाच–

पश्य मे पार्थ रुपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। 5।।

श्री भगवान ने कहा–
हे पार्थ! तुम मेरे प्रिय हो इस कारण मैं तुम्हे अपने सैंकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्णों तथा आकृतियों वाले रुपों को दिखलाता हूं।

पश्य आदित्यान् वसून् रुद्रान् अश्विनौ मरुतः तथा।
बहूनि अदृष्टपूर्वाणि पश्य आश्चर्याणि भारत।। 6।।

हे भारत (भरतवंशी अर्जुन)! तुम मुझमें द्वादश आदित्यों, आठ वसुओं, एकादश रुद्रों, दोनो अश्वनीकुमारों तथा 49 मरुद्गणो को देखो तथा और भी बहुत से पहले न देखे हुये आश्चर्यमय रुपों को देखो।

इह एकस्थं जगत् कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यत् द्रष्टुमिच्छसि।। 7।।

हे गुड़ाकेश (अर्जुन)! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित हुये चराचर सम्पूर्ण जगत को देखो तथा और भी जो कुछ देखना चाहते हो उसे देख लो।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुम् अनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगम् ऐश्वरम्।। 8।।

हे अर्जुन! तुम अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा मुझे देखने में निःसन्देह समर्थ नहीं हो सकते हो, अतः मै तुम्हे दिव्य चक्षु देता हूं उससे तुम मेरी महिमा और योग शक्ति को देख सकते हो।

संजय उवाच–

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रुपम् ऐश्वरम्।। 9।।

संजय ने कहा–
हे राजन (धृतराष्ट्र)! महायोगेश्वर हरि (सब पापो के नाश करने वाले) ने इस प्रकार कह कर अर्जुन को दिव्य चक्षु देकर अपना परम ऐश्वर्य युक्त दिव्य स्वरुप दिखाया।

अनेक वक्त्रनयनम् अनेक अद्भुतदर्शनम्।
अनेक दिव्य आभरणं दिव्य अनेकोद्यतायुधम्।। 10।।

वह दिव्य स्वरुप अनेक मुख और नेत्रों से युक्त था, उसके अनेक अद्भुत दर्शन थे, वह बहुत से दिव्य आभूषणों से युक्त था, और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाये हुये था।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवम् अनन्तं विश्वतोमुखम्।। 11।।

तब अर्जुन ने दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुये और दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये हुये समस्त प्रकार के आश्चर्यों से युक्त उस अनन्त विराट स्वरुप परम देव को देखा।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेत् युगपत् उत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्यात् भासस्तस्य महात्मनः।। 12।।

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होगा वह भी उस विश्वरुप परमात्मा के प्रकाश के समान नहीं होगा।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तम् अनेकधा।
अपश्यत् देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।। 13।।

ऐसे आश्चर्यमय रुप को देखते हुये पाण्डु पुत्र अर्जुन ने जगत के विभिन्न भागों को उन देवों के देव ईश्वर के शरीर में एक ही जगह स्थित हुये देखा।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतान्जलिः अभाषत।। 14।।

और तब आश्चर्य से युक्त हुआ हर्षित रोमों वाला अर्जुन उस विश्वरुप देव को श्रद्धा सहित सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुये बोला।

अर्जुन उवाच–

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम् ऋषींश्च सर्वान् उरगांश्च दिव्यान्।। 15।।

अर्जुन ने कहा–
हे देव! आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूत विशेषों के समुदायों को, कमल के आसन पर बैठे हुये ब्रह्मा को और सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को मैं देख रहा हूं।

अनेकबाहूदर वक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरुपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनः तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरुप।। 16।।

हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी! आपको अनेक हाथों, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रुपों वाला देख रहा हूं। हे विश्व रुप! आपका न तो आदि, न मध्य और न अन्त ही देख पा रहा हूं। अर्थात आप अनादि, शाश्वत् और अनन्त रुपा हैं।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्तात् दीप्त अनलार्कद्युतिम् अप्रमेयम्।। 17।।

हे भगवन! मैं आपका मुकुटयुक्त, गदायुक्त तथा चक्रयुक्त और सब ओर से प्रकाशमान तेज का पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतिर्मय रुप जो देखने में अति कठिन और अप्रमेय (अज्ञेय) स्वरुप है उसको सब ओर से देख रहा हूं।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वम् अव्ययः शाश्वत् धर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।। 18।।

हे भगवन! आप ही जानने योग्य परम अक्षर हैं अर्थात परब्रह्म परमात्मा हैं और आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं तथा आप ही अविनाशी शाश्वत धर्मज्ञाता हैं और आप ही सनातन पुरुष हैं ऐसा मेरा मत है।

अनादिमध्यान्तम् अनन्तवीर्यम् अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।। 19।।

हे परमेश्वर! मैं आपको आदि, अन्त और मध्य से रहित, अनन्त सामर्थ्यवान, अनन्त हाथों वाला तथा सूर्य–चन्द्र रुपी नेत्रों वाला और प्रज्वलित अग्नि रुप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपाने वाला देख रहा हूं।

द्यावापृथिव्योः इदमन्तरं हि व्याप्तं त्वया एकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्टा अद्भुतं रुपम् उग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।। 20।।

हे महात्मन! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशायें केवल आप से ही व्याप्त हैं तथा आपके इस आलौकिक और भयंकर रुप को देखकर तीनो लोक अति व्याकुल हो रहे हैं।

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचित् भीताः प्रान्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीति उक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।। 21।।

हे गोविन्द! वे सब देवताओं के समूह आप ही में प्रवेश कर रहे हैं और कई भयभीत होकर हाथ जोड़े हुये आपकी स्तुति कर रहे हैं। महर्षिगण और सिद्धों के समुदाय स्वस्ति वचन (कल्याण हो) कह कर उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्च उष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।। 22।।

जो एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्यगण विश्वदेव तथा दो अश्वनीकुमार और मरुद्गण और पितरों का समुदाय तथा गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं वे सब भी आश्चर्यचकित हुये आपको देख रहे हैं।

रुपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहु उरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्रा करालं दृष्टवा लोकाः प्रव्यथिताः तथाहम्।। 23।।

हे महाबाहु! आपके बहुत से मुखों और नेत्रों वाले तथा बहुत से हाथों, जंघाओं और पैरो वाले और बहुत से उदरों वाले तथा बहुत सी विकराल दाढ़ो वाले महान रुप को देखकर सारे लोक भयभीत हो रहे हैं तथा मैं भी भयभीत हो रहा हूं।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्टवा हि त्वां प्रव्यथित अन्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।। 24।।

हे विष्णु! आकाश को स्पर्श किये हुये दैदीप्यमान अनेक रुपों से युक्त तथा विशाल मुख और प्रकाशवान विशाल नेत्रों से युक्त आपके रुप को देखकर मैं भयभीत और अशान्त हो रहा हूं और मुझे धैर्य नहीं मिल पा रहा है।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वा एव कालानलसम् निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 25।।

आपके विकराल दाढ़ों वाले और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित मुखों को देखकर मुझे दिशा भ्रम हो रहा है और मैं अशान्त हो रहा हूं। इसलिये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हो जाइये।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैव अवनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयै् अपि योधमुख्यैः।। 26।।

मैं देख रहा हूं कि धृतराष्ट्र के सभी पुत्रगण अन्य राजाओं के समुदाय सहित आपके मुख में प्रवेश कर रहे हैं। भीष्म, द्रोण, कर्ण तथा हमारे पक्ष के प्रधान योद्धाओं सहित सबके सब आपके मुख में प्रवेश करते जा रहे हैं (अर्थात काल की ओर बढ़ रहे हैं)।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचित् विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैः उत्तमांगैः।। 27।।

वे सभी तीव्र वेग से आपके विकराल दाढ़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश करते जा रहे हैं और कई के सिर आपके दातों के बीच में फंसे हुये चूर्ण हुये दिखाई पड़ रहे हैं।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेव अभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राणि अभिविज्वलन्ति।। 28।।

हे परमेश्वर! जैसे नदियों के बहुत से जल प्रवाह समुद्र की ओर वेग से दौड़ते हुये समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसे ही इन शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आपके प्रज्वलित हुये मुखों मे प्रवेश कर रहे हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकाः तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।। 29।।

जैसे पतंगे मोहवश होकर नष्ट होने के लिये प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से प्रवेश करते हैं, वैसे ही यह सब लोक भी अपने नाश के लिये आपके मुखों में अति वेग से प्रवेश करते जा रहे हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्तात् लोकान् समग्रान् वदनैः ज्वलद्भिः।
तेजोभिः आपूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।। 30।।

हे विष्णु! आप अपने प्रज्वलित मुखों द्वारा इन समस्त लोकों को ग्रसते हुये सब ओर से आस्वादन कर रहे हैं। आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है।

आख्याहि मे को भवान् उग्ररुपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुम् इच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।। 31।।

हे भगवन! कृपा करके मुझे बतलाइये कि उग्र रुप वाले आप कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ आपको नमस्कार है। आप प्रसन्न हों। आदि स्वरुप आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नही जानता। अर्थात आप कौन हैं, आपका वास्तविक स्वरुप क्या है, आप इस उग्र रुप में क्यों हैं? कृपया मुझे समझाइये।

श्रीभगवान उवाच–

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुम् इह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रति अनीकेषु योधाः।। 32।।

श्रीभगवान ने कहा–
हे अर्जुन! मैं लोकों का विनाश करने वाला उद्धत महाकाल हूं। इस समय मैं इन लोकों को नष्ट करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूं। इसलिये दोनो पक्षो की सेनाओं में जो योद्धा हैं वे तुम्हारे बिना भी जीवित नहीं रहेंगे।

तस्मात् त्वम् उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मया एवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। 33।।

अतः हे सव्यसाची (बाएं हाथ से भी वाण चलाने वाला)! इसलिये तुम उठकर खड़े हो जाओ और शत्रुओं को जीतकर यश को प्राप्त करो और धन–धान्य से सम्पन्न राज्य को भोगो। यह सब शूरवीर तो पहले से ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तुम केवल निमित्त मात्र ही बन जाओ।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा अन्यान् अपि योधवीरान्।
मया हतान् त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।। 34।।

द्रोणाचार्य, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण तथा और भी बहुत से मेरे द्वारा मारे गये शूरवीर योद्धाओं को तुम मारो, भय मत करो। युद्ध में निःसंदेह तुम शत्रुओं को जीतोगे।

संजय उवाच–

एतत् श्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतान्जलिः वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदम् भीतभीतः प्रणम्य।। 35।।

संजय ने कहा–
केशव के इन वचनों को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुये नमस्कार करता हुआ फिर भी भयभीत होकर कांपता हुआ, प्रणाम करके श्रीकृष्ण के लिये गदगद वाणी से बोला।

अर्जुन उवाच–

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्यति अनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।। 36।।

अर्जुन ने कहा–
हे अन्तर्यामी! आपके ऐश्वर्य के अनुरुप यह ठीक ही है कि आपके गुण–गान से जगत अति हर्षित और अनुरागमय हो जाता है, और भयभीत राक्षस विभिन्न दिशाओं में डरकर भागते हैं, और सब सिद्धगणों के समुदाय आपको नमस्कार करते हैं।

कस्माच्च ते न नमेरन् महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽपि आदिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सत् असत् तत्परं यत्।। 37।।

हे महात्मन! आप ब्रह्मा के भी आदिकर्ता और सबसे श्रेष्ठ हैं, आपके लिये वे सब नमस्कार क्यों न करें, क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे भी परे अक्षर अर्थात सच्चिदानन्द ब्रह्म है वह आप ही हैं।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरुप।। 38।।

हे भगवन! आप आदि देव सनातन पुरुष हैं। आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्त रुप आपसे ही यह सब जगत व्याप्त अर्थात परिपूर्ण है।

वायुः यमः अग्निः वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।। 39।।

हे प्रभु! आप वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपको हजारों बार नमस्कार है। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूं।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतः ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्य अमितविक्रमः त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।। 40।।

हे अनन्त सामर्थ्य वाले भगवन! मैं आपको आगे से और पीछे से भी नमस्कार करता हूं। हे सर्वात्मन! आपके लिये सब ओर से ही नमस्कार है। आप अनन्त पराक्रमशाली हैं, आप सारे संसार में व्याप्त हैं, आप सर्वरुप हैं।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि।। 41।।

हे परमेश्वर! आपको सखा मानकर मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी 'हे कृष्ण', 'हे यादव', 'हे सखा' इस प्रकार जो कुछ अज्ञानतापूर्वक कहा गया वह सब आपकी महिमा को न जानते हुये मेरे द्वारा कह दिया गया।

यच्च अवहासार्थम् असत्कृतोऽसि विहारशय्या आसनभोजनेषु।
एकोऽथवा अपि अच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्।। 42।।

और हे अच्युत! जो हास–परिहास में, विहार, शय्या, आसन और भोजन आदि के समय, अकेले में अथवा सखाओं के सामने, मैने आपके लिये न कहने योग्य शब्दों को कहा है उन सभी अपराधों के लिये मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समः अस्ति अभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रये अपि अप्रतिमप्रभाव।। 43।।

हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आपके समान कोई दूसरा नहीं है, आपसे श्रेष्ठ तो कोई हो ही नही सकता।

तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वाम् अहमीशमीडयम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाः अर्हसि देव सोढुम्।। 44।।

इसलिये हे भगवन! मैं आपको प्रसन्न करने के लिये अपने शरीर के द्वारा साष्टांग प्रणाम करता हूं, आप स्तुति के योग्य हैं, आपसे प्रसन्न होने के लिये प्रार्थना करता हूं। हे देव! जैसे पिता पुत्र के अपराध को, मित्र अपने मित्र के अपराध को और प्रिय अपनी प्रिया के अपराध को क्षमा करता है वैसे ही आप भी मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्टवा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रुपं प्रसीद देवेश जगन्निवास।। 45।।

हे विश्वमूर्ति! मैं आपके इस पहले न देखे हुये आश्चर्यमय रुप को देखकर हर्षित हो रहा हूं लेकिन मेरा मन भय से भी व्याकुल हो रहा है। इसलिये हे देव! आप अपने उस चतुर्भुज रुप को ही मुझे दिखाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रुपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।। 46।।

हे विष्णु! मैं आपको वैसे ही मुकुट धारण किये हुये तथा गदा और चक्र हाथ में लिये हुये देखना चाहता हूं इसलिये हे विश्वमूर्ति! हे सहस्रबाहु! आप अपने उसी चतुर्भुज रुप में आ जाइये।

श्रीभगवान उवाच–

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रुपं परं दर्शितम् आत्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वम् अनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।। 47।।

श्रीभगवान ने कहा–
हे अर्जुन! मैने तुमसे प्रसन्न होकर तुम्हे अपनी योग शक्ति के प्रभाव से अपना यह परम तेजोमय रुप जो सबका आदि है, सीमारहित है और विराट है वह तुम्हे दिखलाया है, जो तुम्हारे सिवा किसी अन्य ने पहले नहीं देखा है।

न वेदयज्ञ अध्ययनैः न दानैः न च क्रियाभिः न तपोभिरुग्रैः।
एवंरुपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।। 48।।

हे कुरुश्रेष्ठ! मेरा यह विश्वरुप न तो वेदों के अध्ययन से, न यज्ञों से, न दान से, न क्रियाओं से, न उग्र तपों से देखा जा सकता है। यह रुप मनुष्यलोक में तुम्हारे सिवाय किसी अन्य द्वारा नही देखा गया है।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्टवा रुपं घोरम् इदृक् ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रुपमिदं प्रपश्य।। 49।।

मेरे इस प्रकार के विकराल रुप को देखकर तुम व्याकुल और किंकर्तव्यविमूढ़ मत होओ। भय रहित होकर और प्रसन्न मन से तुम पुनः मेरे पूर्व रुप को देखो।

संजय उवाच–

इत्यर्जुनं वासुदेवः तथोक्त्वा स्वकं रुपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुः महात्मा।। 50।।

संजय ने कहा–
हे राजन! तब वासुदेव ने अर्जुन से इस प्रकार कहकर पुनः अपने चतुर्भुज रुप को दिखाया और फिर से सौम्य रुप धारण करके भयभीत हुये अर्जुन को आश्वस्त किया।

अर्जुन उवाच–

दृष्ट्वा इदं मानुषं रुपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।। 51।।

अर्जुन ने कहा–
हे जनार्दन! आपके इस सौम्य, शान्त मनुष्य रुप को देखकर अब मैं शान्त चित्त होकर अपने स्वाभाविक रुप में आ गया हूं।

श्रीभगवान उवाच–

सुदुर्दर्शमिदं रुपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रुपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः।। 52।।

श्रीभगवान ने कहा–
हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्भुज रुप जिसको तुमने देखा है वह देखने को मिलना अति दुर्लभ है। देवता भी सदा इस रुप के दर्शन करने के इच्छुक रहते हैं।

नाहं वेदैः न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।। 53।।

हे अर्जुन! मेरा यह चतुर्भुज रुप न वेदों के अध्ययन से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता है।

भक्त्या तु अनन्यया शक्य अहम् एवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।। 54।।

हे परंतप (श्रेष्ठ तप वाले अर्जुन)! अनन्य भक्ति के द्वारा मुझे देखा जा सकता है तथा तत्व से मुझे जाना जा सकता है तथा मुझमें प्रवेश किया जा सकता है। अर्थात अनन्य भक्ति से ईश्वर को जान सकना तथा तत्व दृष्टि से ईश्वर को प्राप्त कर सकना संभव है।

मत्कर्मकृत् मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।। 55।।

हे अर्जुन! जो व्यक्ति केवल मेरे लिये ही यज्ञ, दान, तप आदि सम्पूर्ण कर्मों को करने वाला है तथा मुझे ही परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है जो मेरा भक्त है और मेरे नाम, गुण और रहस्य का श्रवण, मनन, ध्यान और पठन–पाठन निष्काम भाव से निरन्तर करने वाला है, जो सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों मे आसक्ति रहित है और जो समस्त प्राणियों से बैर भाव से रहित है, ऐसा व्यक्ति मुझे प्राप्त करता है।

।। इति एकादशोऽध्यायः।।